Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. XIV, Issue No. 1, October-2017, ISSN 2230-7540

किरातार्जुनीयम् महाकाव्य में दुर्जन एवं सज्जन आचरण विवेचन

Dr. Badlu Ram Shastri*

Lecturer in Sanskrit, B.S.R. Govt. Arts College, Alwar, Rajasthan

संक्षेपण:- *किरातार्जुनीयम् संस्कृत के सुप्रसिद्ध महाकाव्यों में से अन्यतम है जो छठी शताब्दी या उसके पहले लिखा गया है। इसको महाकाव्यों की 'बृहत्त्रयी' में प्रथम स्थान प्राप्त है। महाकवि कालिदास की कृतियों के अनन्तर संस्कृत साहित्य में भारवि के किरातार्जुनीयम् का ही स्थान है। बृहत्त्रयी के दूसरे महाकाव्य 'शिशुपालवधम्' तथा 'नैषधीयचरितम्' हैं। किरातार्जुनीयम् राजनीति प्रधान महाकाव्य है। राजनीति वीररस से अछूती नही हो सकती है। फलतः इसका प्रधान रस 'वीर' है। किरातार्जुनीयम् प्रसिद्ध प्राचीन संस्कृत ग्रंथों में से एक है। इसे एक उत्कृष्ट काव्य रचना माना जाता है। इसके रचनाकार महाकवि भारवि हैं, जिनका समय छठी-सातवीं शताब्दी माना जाता है। यह रचना 'किरात' रूपधारी शिव एवं पांडु पुत्र अर्जुन के बीच हुए धनुर्युद्ध तथा वार्तालाप पर आधारित है। 'महाभारत' में वर्णित किरातवेशी शिव के साथ अर्जुन के युद्ध की लघु कथा को आधार बनाकर कवि ने राजनीति, धर्मनीति, कूटनीति, समाजनीति, युद्धनीति, जनजीवन आदि का मनोरम वर्णन किया है। यह काव्य विभिन्न रसों से ओतप्रोत है।*

प्रमुख बिन्दु:- *भारवि परिचय, किरातार्जुनीयम् विशेषता, कथावस्तु, काव्य चातुर्य, काव्य चातुर्य और भाषा, दुर्जन सज्जन आचरण विवेचन।*

---------------------------------X---------------------------------

भारवि परिचय:-

भारवि (छठी शताब्दी) संस्कृत के महान कवि हैं। वे अर्थ की गौरवता के लिये प्रसिद्ध हैं ("भारवेरर्थगौरवम्")। किरातार्जुनीयम् महाकाव्य उनकी महान रचना है। इसे एक उत्कृष्ट श्रेणी की काव्यरचना माना जाता है। इनका काल छठी-सातवीं शताब्दि बताया जाता है। यह काव्य किरातरूपधारी शिव एवं पांडुपुत्र अर्जुन के बीच के धनुर्युद्ध तथा वाद-वार्तालाप पर केंद्रित है। महाभारत के वन पर्व पर आधारित इस महाकाव्य में अट्ठारह सर्ग हैं। भारवि सम्भवतः दक्षिण भारत के कहीं जन्मे थे। उनका रचनाकाल पश्चिमी गंग राजवंश के राजा दुर्विनीत तथा पल्लव राजवंश के राजा सिंहविष्णु के शासनकाल के समय का है। कवि ने बड़े से बड़े अर्थ को थोड़े से शब्दों में प्रकट कर अपनी काव्य-कुशलता का परिचय दिया है। कोमल भावों का प्रदर्शन भी कुशलतापूर्वक किया गया है। इसकी भाषा उदात्त एवं हृदय भावों को प्रकट करने वाली है। प्रकृति के दृश्यों का वर्णन भी अत्यन्त मनोहारी है। भारवि ने केवल एक अक्षर 'न' वाला श्लोक लिखकर अपनी काव्य चातुरी का परिचय दिया है।

उद्देश्य:

1. महाकवि भारवि के किरातार्जुनीयम् में वर्णित दुर्जनों और सज्जनों के प्रति व्यवहार का अध्ययन किया गया है।

2. महाकवि भारवि के किरातार्जुनीयम् की विशेषताओं की जानकारी प्रदान की गई।

विषय सामग्री संकलन:-

प्रस्तुत शोध में सामग्री का संकलन महाकवि भारवि द्वारा रचित ग्रंथों, किरातार्जुनीयम्, संस्कृत साहित्य एवं पुस्तकालय में उपलब्ध शोध ग्रंथो के माध्यम से किया गया है।

कथावस्तु:

भारवि की कीर्ति का आधार-स्तम्भ उनकी एकमात्र रचना 'किरातार्जुनीयम्' महाकाव्य है, जिसकी कथावस्तु महाभारत से ली गई है। इसमें अर्जुन तथा 'किरात' वेशधारी शिव के बीच

www.ignited.in

युद्ध का वर्णन है। अन्ततोगत्वा शिव प्रसन्न होकर अर्जुन को 'पाशुपतास्त्र' प्रदान करते हैं।

वीर रस प्रधान:

किरातार्जुनीयम् एक वीर रस प्रधान 18 सर्गों का महाकाव्य है। इनका प्रारम्भ 'श्री' शब्द से होता है तथा प्रत्येक सर्ग के अन्तिम श्लोक में 'लक्ष्मी' शब्द का प्रयोग मिलता है। यह कृति अपने अर्थगौरव के लिए प्रसिद्ध है। कवि ने बड़े से बड़े अर्थ को थोड़े से शब्दों में प्रकट कर अपनी काव्य कुशलता का परिचय दिया है। कोमल भावों का प्रदर्शन भी कुशलतापूर्वक किया गया है। प्राकृतिक दृश्यों तथा ऋतुओं का वर्णन भी रमणीय है।

काव्य चातुर्य और भाषा:

भारवि ने केवल एक अक्षर 'न' वाला श्लोक लिखकर अपनी काव्य चातुरी का परिचय दिया है। कहीं-कहीं कविता में कठिनता भी आ गई है। इस कारण विद्वानों ने इनकी कविता को 'नारिकेल फल के समान' बताया है। किरात में राजनीतिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन भी अत्यन्त उत्कृष्टता के साथ में किया गया है। इसकी भाषा उदात्त एवं हृदय भावों को प्रकट करने वाली है। कवि में कोमल तथा उग्र दोनों प्रकार के भावों को प्रकट करने की समान शक्ति एवं सामर्थ्य थी। प्रकृति के दृश्यों का वर्णन भी अत्यन्त मनोहारी है।

इसी प्रकार भारवि के काव्य शिल्प का उत्कृष्ट नमूना हम निम्न लिखित सर्वतोभद्र बन्ध में भी देखते हैं।

दे वा का नि नि का वा दे

वा हि का स्व स्व का हि वा

का का रे भ भ रे का का

नि स्व भ व्य व्य भ स्व नि

इस सर्वतोभद्र बन्ध की विशेषता यह है कि इसे जिस ओर से भी पढ़िए पूरा श्लोक बन जाता है। श्लोक का वास्तविक स्वरुप निम्नलिखित है जो आठों कोष्ठकों के चतुष्टय के क्रमश चारों ओर से बन जाता है।

किरातार्जुनीयम् में दुर्जन सज्जन आचरण विवेचन:

इस लोक तथ परलोक में कीर्ति और शोभा से युक्त महान ऐश्वर्य की कामना करने वाले शरीर धारियों के लिए कुटुम्बियों के साथ समान व्यवहार करना उचित है तथा तपस्वियों के लिए तो विशेष प्रकार से समान व्यवहार करना उचित है।

बीतस्पृहाणामपि मुक्तिभाजां भवन्ति भव्येषु हि पक्षपाताः।

संसार में ऐसे बिरले ही प्ररूप होंगे जो समदर्शिता के धारण हो। सुख-दुःख, हर्ष-विषद अथवा हानि लाभ जैसी विपरीत परिस्थितियों में अपने व्यवहार में समरूपता रखना सामान्य मनुष्य की सामथ्र्य से परे है और इतना ही नहीं विशिष्ट जन भी अपने आप को पक्षपात से नहीं बचा पाते हैं। इस लिए महाकवि भारवि कहते हैं कि गुण राशि सम्पूर्ण संसार को चुम्बन की भांति अपनी ओर आकृष्ट करने की सामथ्र्य रखती है। इसी लिये कामना रहित, भक्ति के चाहने वाले महात्माओं का भी सज्जनों के प्रति पक्षपात हो ही जाता है। यह पक्षपात दुर्जनों के प्रति न होकर सज्जनों के प्रति ही होता है जो जन सामान्य के लिये भी श्रेयस्कर सिद्ध होता है।

विष्वासयत्याषु सतां हि योगः।

सज्जनों का सम्पर्क शीघ्र ही विश्वास उत्पन्न करा देता है। यद्यपि मात्र मुखाकृति देखकर किसी भी मनुष्य की सज्जनता अथवा दुर्जनता का अनुमान लगा पाना कठिन है तथापि व्यवहार तथा आचार-विचार देखने से सज्जनों की पहचान सहजता से की जा सकती है, हितकारी स्वभाव वाले सज्जनों का सम्पर्क इसी लिये शीघ्र ही विश्वास उत्पन्न करा देता है।

करोति योऽशेषजनातिरिक्तां संभावनामर्थवतीं क्रियाभिः।

संसत्यु जाते पुरुषाधिकारे न पूरणी तं समुपैति संख्या।।

संस्कृत साहित्याकाश के देदीयमान नक्षत्र महाकवि कालिदास "कविकुलगुरु" के नाम से प्रख्यात है, क्योंकि उनकी बाधी सज्जनों में ज्ञान सिंचित करने, कायरों में श्री साहस और उत्साह भरने की प्रकृति के सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूपों को उकेरने और मानव मानस के अन्तर्निहित भावों को चित्रित करने की समान सामथ्र्य रखती है, इसीलिये साहित्य में कालीदास का स्थान अन्य कोई कवि नहीं ले पाया। उनके विषय में इसी लिये कहा भी गया है।

पुराकवीनां गणनाप्रसङ्गे,

कनिष्ठिकाधिष्ठित कालिदासः,

अद्यपि तत्तुल्य कवेर भावात्

अनामिका सार्थवती बभूव।।

अर्थात् प्राचीन काल में श्रेष्ठ कवियों की गणना में सर्वप्रथम कालिदास का नाम कनिष्ठिका पर गिना जाता है। उसके बाद आज भी उस कवि के तुल्य अन्य कवि के अभाव से कनिष्ठिता

www.ignited.in

के पास की अंगुली अनामिका सार्थक है। श्रेष्ठ व्यक्तियों को अनुपम व्यक्तियों में ही गिना जाता है। इसीलिए यहां कवि भारवि के इस कथन को समर्थन मिलता है-

जो व्यक्ति अपने कर्तव्यों के निर्वहन द्वारा अपनी सभी श्रेष्कर योग्यताओं को सफल बनाता है, सभा में उस योग्य पुरुष की गणना का प्रस्ताव उपस्थित होने पर उस पुरुष की समानता के लिये फिर दूसरी संख्या उसके पास नहीं आती अर्थात् वह एक (अद्‌वितीय) गिना जाता है। संसार में कोई भी मनुष्य अपनी योग्यता के बल पर सर्वोच्च स्थान प्राप्त कर सकता है।

मात्सर्यरागोदहतात्मनां हिस्रवलन्ति साधुध्वपि मानसानि।

प्रिय वस्तु के प्रति आसक्ति और अप्रिय वस्तु के प्रति ईर्ष्या, ये दोनों क्रमशः मानस-मन में राग द्वेष को जन्म देते हैं। मनीषियों का कथन है कि ये दोनों ही भाव मानव-मन को कलुषित करते हैं। रागद्वेष के वशीभूत होकर मनुष्य हेय और ग्राह्‌य में भेद करना भूल जाता है, अच्छे को बुरा और बुरे को अच्छा मानने लगता है। रागद्वेष मनुष्य को दुष्कर्म करने की ओर प्रवृत्त करते हैं। रागी-द्‌वेष मनुष्य कुमार्ग को सन्मार्ग और दुष्कर्मों की सत्कर्म समझने लगता है। महाकवि भारवि ने कहा है कि राग द्‌वेष से आकृष्ट व्यक्तियों के चित्त महात्माओं के विषय में भी विकृत हो जाते हैं। पुराणों में रागद्‌वेषादि दोषों से कलुषित चित्त वाले दुष्टजनों के विषय में कहा गया है-

अदोषामपिदोशाक्तां पष्यन्ति रचनां खलाः।

अर्थात् दुष्ट पुरुष निर्दोष रचना में भी दोष ही देखते हैं।

महापुराण में ''नतिदन्ति खलाः श्वैरा युक्तायुक्त विचेष्टितम्।।

के द्‌वारा स्पष्ट किया गया है कि दुष्ट व्यक्ति योग्य और अयोग्य चेष्टाओं में अन्तर नहीं मानते हैं।

इस संसार में रागद्‌वेष के कारण उत्पन्न मोह से गस्त मनुष्य सज्जनों का भी अपमान कर बैठता है। ऐसे दुष्ट लोगों का हृदय बड़े लोगों का विरोधी बन जाता है-

प्रायः स्खलन्ति चेतांसि महत्स्वपि दुरात्मनाम्।

वस्तुतः राग-द्‌वेष समस्त बुराइयों की जड़ है यह मनुष्य को दुष्कर्मों की ओर प्रवृत्त करता है अतः इनसे बचने का उपाय करना चाहिए।

सुदुर्लभे नार्हति कोअभिनन्दितुं प्रकर्पलक्ष्मीमनुरूपसं ‍मे।

कष्ट कष्टकों से भरे इस संसार में विरले ही मनुष्यों की अपनी अभिलक्षित वस्तुएं सहजता से प्राप्त है। अपनी प्रिय वस्तु को प्राप्त करने के मनुष्य को अपनी अत्यधिक शक्ति और समय लगाना पड़ता है। लक्ष्य तक पहुचने अथवा सफलता प्राप्ति तक भले ही कितना परिश्रम करना पड़े लेकिन दृष्प्रात्य वस्तुओं को प्राप्त कर लेने पर प्रत्येक मनुष्य को हार्दिक प्रसन्नता होती है। भारवि यह कहते हैं कि दुष्प्राप्य और योग्य सम्बन्ध प्राप्त होने पर कौन सा मनुष्य होगा जो उत्कृष्ट सम्पत्ति का स्वागत न करे। निःसन्देह कठिनाई से प्राप्त होने वाली प्रिय वस्तु को प्राप्त कर मनुष्य का अन्त्तमन भी अति प्रसन्न हो जाता है, क्योंकि सहजता से प्राप्त होने वाली प्रिय वस्तु को पाकर मनुष्य इतना प्रसन्न नहीं होता जितना दुर्लभ वस्तु प्राप्त कर होता है। इसी लिये यहाँ भारवि दुर्लभ लेकिन इष्ट वस्तु की प्राप्ति कर मानव-मनमयूर के हर्षित होने की बात करते हैं।

न हीङ्गितज्ञोअवसरेअवसीदति।

अपने प्रत्येक शब्द से जन मानस के अन्त्तमन को जागृत करने की सामश्र्य रखने वाले अमर कवि भर्तुहरि ने अति सुन्दर प्रयोग करते हुए जीवन के लाभ-हानि को दर्शाया है। वे कहते हैं- का हानिः समयच्युतिः अर्थात् हानि क्या है?

समयच्युति अर्थात् अवसर चूक जाना।

गुणाधीन कुलं ज्ञात्वा गुणेष्वाधीयतां मतिः।

कुलों अर्थात् वंशों के सम्मान का कारण गुण है अतः गुणों में बुद्धि लगानी चाहिए। आचरण और व्यवहार से ही गुण परिलक्षित होते हैं। हिन्दी के कवि नागरी दास ने कहा है कि-

काठ काठ सब एक से सब काहू दरसात।

अनिल मिलै जब अगर को तब गुण जान्यो जात।।

इस लोक में गुणों की उत्कृष्टता प्रतिपादित करने के लिए कोयल और कौआ श्रेष्ठ उदाहरण के रूप में जाने जा सकते हैं। प्रतिदिन सुनाई देने वाली काक की कर्कश ध्वनि की अपेक्षा कभी-कभी सुनाई देने वाली कोयल की मधुर ध्वनि ही मन को अधिक मोहित करती है। अतः प्रिय होने में गुण ही प्रमुख कारण है मात्र परिचय नहीं।

महते रूजन्नपि गुणाय महान्।

मात्सर्य भाव को जीतने वाले, सदैव परोपकार के लिए उद्‌यत, दूसरों की उन्नति में प्रसन्न वह विपत्ति से आतुल, महापुरुषों

की सत्कथाओं को सुनने को लालायित तथा समस्त पापरूपी समुद्र को पार करने हेतु प्रत्यक्ष सेतु के समान महापुरुषें का यशगान विद्वज्जनों और साहित्यकारों ने किया है। वस्तुतः महापुरुषों की प्रकृति ही ऐसी होती है कि वे कष्ट सहन करके भी महान उत्कर्ष के लिए यत्नशील रहते हैं हम अपने देश में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का ही उदाहरण ले जिन्होंने देश को स्वतन्त्र कराने के लिए स्वयं परिगृह त्याग कर सत्य और अहिंसा रूपी शास्त्र का प्रयोग करते हुये देश की रक्षा में अपना जीवन व्यतीत कर दिया। अनेक बार जेल जाने के बाद भी वे अंग्रेजों से भारत की भक्त करवाने के लिए ही दृढ प्रतिज्ञ थे। अंग्रेज शासन के विरुद्ध असहयोग आन्दोलन सविनय अवज्ञा आन्दोलन तथा करो या मरो के संकल्प वाले भारत छोड़ो आन्दोलन छेड़ने का सारा श्रेय महात्मा गांधी को ही है। जब सारा देश भारत की स्वतन्त्रता का उत्सव मना रहा था तब भी महात्मा गांधी निर्धन और असहाय लोगों की सेवा में ही रत थे। ऐसे निःस्वार्थ महापुरुष विभिन्न कष्टों को सहन करते हुये भी महान उत्कर्ष के लिये सदैव प्रयत्नशील रहते हैं।

न तपः किमिवावसदकरमात्मवताम्।

मनुस्वियों के लिये संसार में ऐसा कोई भी कारण नहीं है जो उनके चित्त को उद्वेलित करे। संस्कृत कवि ने मनस्वियों की प्रकृति का सुन्दर चित्रण करते हुए कहा है-

निन्दन्तु नीति निपुणा अथवा स्तुवन्तु

लक्ष्मीः समविषातु गच्छतु वा यथेष्टम्।

अद्यैववामरणमस्तु युगान्तरेवा,

न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः।।

जीवन की विविध सम-विषम परिस्थितियों में मनस्वीजन सदैव समान आचरण करते है। सहगुणों से परिपूर्ण ऐसे सज्जनों का मन समस्त दोष रहित होता है। इसीलिये वे सभी के आदरणीय और अनुकरणीय होते है। जो मनस्वी होते हैं। वे सुख-दुःख में भी समस्यता रखते है। इसीलिए भारवि ने कहा है कि कोई भी विषम परिस्थिति महापुरुषों के चित्त को विकृत नहीं करती है।

न जगाम विस्मयवषं वषिनांन निहन्ति धैर्यमनुभाव गुणः।

जितेन्द्रिय पुरुषों के अनुभाव रूप गुण उन्हें धैर्यच्युत नहीं करते हैं।

क्व वनेचराः क्व निपुणा मतषः।

प्रकृति और शक्ति के आधार पर संसार में मनुष्यों में भी भिन्नता देखी जाती है। कोई बहुत कमजोर है तो कोई अत्यधिक बलवान, कोई विलक्षण मति है। तो कोई मति। निःसन्देह विरोधी स्वभाव वालों का मेल बहुत कठिन है। कालिदास ने “क्वसूर्य प्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः” कह कर इसी आशय को चरितार्थ किया है। कहाँ राजा भोज और कहाँ गंगू तेली जैसी कहावते भी इसीलिए प्रचलित हैं। भारवि ने किरातार्जुनीयम् के प्रथम में ही वनेचर के मुख से युधिष्ठिर के प्रति “निसर्गदुर्बाधमबोधविक्लवाः क्व भूपतीनां चरितं क्व जन्तवः” कहकर मानव-प्रकृति की विविधता को ही प्रकट किया है।

यद्यपि वनेचर और मति दोनों ही वन में निवास करते है। फिर भी दोनों की प्रकृति सर्वथा भिन्न होती है। मतिगण शास्त्र ज्ञान में निपुण इन्द्रियों और मन को वश में करने वाले सदैव सन्मार्गगामी होते हैं। जबकि वनेचर स्वच्छन्दचारी हुआ करते हैं इसीलिए भारवि ने कहा है कि जंगली जातियों की बुद्धि कहांँ और कुशल मति तपस्वी कहाँ वनवासी मदिगण की तुलना बनवासी वनेचरों से किया जाना उचित नहीं है।

नमवत्ममाः प्रभवतां हि धियः।

श्रेष्ठ जनों की बुद्धि सदैव नीतिपथावलम्बनी होती है। वे कभी भी अन्याय के मार्ग का आश्रय नहीं लेते है। सदैव न्याय मार्ग पर चलने वाले महापुरुषों का मार्ग इसीलिए अनुकरणीय होता है। “महाजनो येन गतः स पन्थः” कह कर महापुरुषों के मार्ग को ही सन्मार्ग कहा है क्योंकि विपत्ति के समय भी महापुरुष अपने नीति पथ से च्युत नहीं होते हैं।

कल्याणी विधिषु विचित्रता विधातुः।

ब्रहम की सृष्टि रचना कुशलता बड़ी ही कल्याण प्रसविनी है।

मुक्तानां खलु महती परोपकारे कल्याणी भवतिस्जत्स्वपि प्रवृत्तिः।

पर उपकार अर्थात् दूसरों की भलाई। बादल, सूर्य, धरती, आसमान आदि ऐसे अनेक उदाहरण है जो स्वार्थ नहीं परार्थ के लिये जीवित है। संसार में महापुरुष कष्टों को सहते हुये भी परोपकार के लिए सदैव कटिबद्ध रहते हैं। किसी भी स्थिति में वे अपने निश्चय से डिगते नहीं है। अपने विचारों को परिवर्तित नहीं करते है। कवि नीलकण्ठ दीक्षित ने परोपकारियों के दृढ़निश्चय को वर्णित करते हुए कहा है।

अपकारदरशायात्युथ कुर्वन्ति साधवः

छिन्दन्तमपि वृक्षः स्वच्छायया किं न रक्षति।

अर्थात् अपकार किये जाने पर भी सज्जन उपकार ही करते हैं क्या वृक्ष अपनी छाया से वृक्ष को काटने वाले की भी रक्षा नहीं करता है और तो और वृक्ष की इतनी महानता है कि पत्थर मारने वाले लोगों को भी स्वादु फल ही देता है। चन्दन तब स्वयं को काटने वाले कुठार के मुख को भी सुगन्धयुक्त कर देता है।

“निजहेतु व्योम से नहीं बरसता पानी” जैसी पंक्तियाँ बादलों की परोपकरिता को चित्रित करती है वस्तुतः जो परोपकार के लिए कृत संकल्प है वे अपने प्रति होने वाले मान-अपमान अथवा अच्छे बुरे व्यवहार की परवाह नहीं किया करते है उनका मुख्य और एकमात्र लक्ष्य परोपकार ही होता है। इस संसार में या फिर यदि भारत को ही तो निर्धनों के दुःखों को दूर करने के प्रयास परोपकारी लोगां द्वारा ही किये जाते है, क्योंकि परोपकारी ही किसी भी श्रेय की अपेक्ष किये बिना शान्त चित्त से सदैव उपकाररत ही रहते हैं-

सज्जना विवङ्गता अपि न कदापि परोपकारं त्यजन्ति।

तृणमात्र-मक्षण-तसरा करिणो यथा दानद्रवं कुर्वन्सेन।।

संसक्तौ किम सुलभम् महोदयानामुच्छायं नयति यछृच्छयापि योगः।

नीति कवि नारायण पण्डित ने कहा है-

कांचः काचनसंषर्गाद् हन्ति भारकती धुतिम्।

तथा सत्संनिधानेन मूर्खो याति प्रतीणताम्।।

कांच भी कंचन का संग पाकर मकरत मार्ग की शोभा प्राप्त कर लेता है, उसी प्रकार सज्जनों का साथ करने से मूर्ख भी विद्वान् बन जाता है। जैसे वस्त्र को जिस रंग में रंगा जाये वह उसी रंग का हो जाता है, उसी प्रकार जैसी संगत की जाये वैसी ही प्रवृत्ति मनुष्य की हो जाती है। इस लिए भारवि कहते हैं-

महानुभावों के संसर्ग होने पर कौन ऐसी वस्तु है जो दुर्लभ है। सज्जनों का तो आकस्मिक सम्पर्क भी उत्कर्ष की वृद्धि करता है। इसी आशय को कवि ने भी प्रस्तुत किया है-

प्रायीयत्कि´चदपि प्राप्नोत्युत्कर्ष माश्रयान्महतः।

संसार में मनुष्य की पहचान उसकी संगत से भी होती है, अतः मनुष्य को अपने उत्कर्ष के लिये सदैव महापुरुषों की संगति करनी चाहिये। सूत्र भी फूलों के सम्पर्क से सिर पर धारण करने योग्य वन जाते हैं। चाणक्य ने कहा है- “क्षीरश्रितमुदकं क्षीरमेव भवति” अर्थात् दूध का आश्रय लेने वाला यानी दूध ही हो जाता है महापुरुषों का आकस्मिक और अल्पकालिक सम्पर्क भी दीर्ध कालिक उत्कर्ष प्रदान करता है। सत्संगति के महात्मा को कविवर वृन्द ने भी अति सुन्दर शब्दों में प्रस्तुत किया है-

रहे समीप बड़े न के होत बड़ो हित मेल।

सबह जानत बढ़त है, वृन्द बराबर बेल।।

यथोत्तरेच्छा हि गुणेषु कामिनः।

पुलु कामोहि भत्र्यः।

अर्थात् मनुष्य विभिन्न कामनाओं से घिरा होता है, कामना अर्थात् इच्छा। मनुष्य कभी समाप्त न होने वाली इच्छाओं की पूर्ति में ही अपना सम्पूर्ण जीवन व्यर्थ गवा देता है, क्योंकि इन इच्छाओं का कोई अन्त नहीं प्रसिद्ध प्राकृत ग्रन्थ में इच्छा के विषय में कहा गया है-

इच्छा छु आगास समा अणहिंया।

अर्थात् इच्छाएं आकाश के समान अनन्त है। महाकवि भारवि भी इसीलिए कहते हैं कि कामी जन सर्वदा गुणी की अधिकता की खोज में लगे रहते हैं, उपस्थित गुणों से उन्हें संतोष नहीं होता है क्यांकि कामीजनों की अपने काम भोगी से कभी तृप्ति नहीं होती है, जैसे जलती हुई अग्नि की आहुतियों से तृप्ति नहीं होती है। जैसे-जैसे काम सुखी की तृप्ति होती जाती है वैसे-वैसे विषय भोगों की इच्छा अधिक बढ़ती जाती है।

प्राचीन काल से वर्तमान काल तक मनुष्य की यही पद्वति देखी जाती रही है वह उपलब्ध सुख से अधिक और उत्कृष्ट सुख पाने की लालसा में कभी सन्तुष्ट नहींं रह पाता है। जबकि कामनाओं को त्याग देने में ही वास्तविक सुख है। महर्षि वेदव्यास ने कहा है-

यद्यद् त्यजति कामनां तत् सुखस्यामिपूर्यते।

कामस्य वषमो नित्यं दुःखे प्रपद्यते।।

मनुष्य जिस-जिस कामना को छोड़ देता है, उस-उस की ओर से वह सुखी हो जाता है कामना के वशीभूत होकर तो वह सर्वदा दुःख ही पाता है।

जनस्य रूढ़प्रणयस्य चेतसः किभव्य मर्विऽनुनये भृषायते।

घनिष्ठ प्रेमाभिभूत प्रणयीजन के हृदय में लब्धावकाश प्राप्त थोड़ा सा भी कोप अनुनय विनय से बढ़ता ही जाता है। अपने प्रियजन के प्रति प्रेमीजन का कोप अति अनुपम करने पर भी मिटता नहीं है। अनयत्र अथवा अन्य किसी सम्बन्धों या संदर्भों में जनित क्रोध भले ही सिफारिशे या साधारण सी क्षमायाचना के साथ समाप्त हो जाता है। परन्तु प्रणयजनित कोप अनुनय और मान मनुहार से समाप्त होने की अपेक्षा बढ़ता जाता है। यद्यपि प्रिय छोटे बच्चों के कोप को तनिक से अनुनय विनय से क्षीण किया जा सकता है।

महाकवि ने बड़े सुन्दर संदर्भ में इस सूक्ति का प्रयोग किया है किसी प्रिय ने सपत्नी के चिंतन करने के पश्चात् अपनी प्रिया के ऊपर छोटा उड़ायों जिससे वह क्रोधित हो गयी। अनेक प्रकार के अनुनय विनय करने से भी वह प्रसन्न नहीं हुई।

श्रीर्वस्तुमिच्छति निरापदि सर्वः।

लोक में सभी प्राणी सुरक्षित जीवन चाहते हैं मृत्यु से भयभीत रहते हैं। प्रत्येक व्यक्ति को अपने प्राण सर्वाधिक प्रिय होते हैं। अतिवृष्टि, भूकम्प, बाढ़ आदि प्राकृतिक विपदाओं में भी लोग अपने निवास से भाग-भाग कर अपने प्राणों की यथा-तथा रक्षा करते हुये सुरक्षित स्थानों पर जाने की इच्छा करते हैं प्राणों की सुरक्षा को सर्वोपरि मानने के अलावा सामान्यतः मनुष्य अपने स्वाभिमान की रक्षा करने के लिये भी सतत् प्रयत्नशील रहता है, आपत्तियों में भी वह सुरक्षित आश्रय की खोज में रहा रहता है, क्योंकि सामान्यतः विपत्ति अथवा मुसीबत के समय कोई किसी मदद् नहीं करता है, व्यक्ति को स्वयं अपनी सुरक्षा के साधन और स्थान जुटाने पड़ते हैं।

ओजसावि खलु नूनमनूनं नासहायमुपयाति जयश्रीः।

महिमुः शाषिमयखसखः सन्नाददे खिजयि चापमण्डल।

“परस्परोपग्रहों जीवनम्” वाक्य संसार के सभी प्राणियों में परस्पर पूरकत्व प्रतिपादित करता है। मात्र मनुष्य ही नहीं वरन् संसार का कोई भी ऐसा प्रणी नहीं है जो मात्र स्वयं के बल पर ही जीवित रहने का दावा करता है। जन्म से मृत्युपर्यन्त तक विविध प्राकृतिक स्त्रोतों एवं अनेक लोगों के सहयोग से ही जीवन व्यतीत होता है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि ऐसा नहीं कि केवल दुर्बल शक्ति हीन मनुष्यों को ही अन्य का सहारा लेना पड़ता है, परन्तु विद्वज्जनों केमत का समर्थन करते हुये महाकवि भारवि ने यहां कहा है कि सामाथ्र्य सम्पन्न होने पर भी सहायता विहीन पुरुष को विजय श्री प्राप्त नहीं हो पाती है। यह निर्विवाद सत्यहो क्यों कि समर्थ होते हुये भी इति बल्लाभ (कामदेव) ने हिमांश से मित्रता करके ही विजयी धनुष को ग्रहण किया था। यद्यपि धार्मिक मान्यता यह है कि अकेले का ही विशेष महत्त्व है। परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से यह कथन प्रासंगिक नहीं लगता है, क्योंकि पग-पग पर समर्थवान् अथवा असमर्थ दोनों कोही किसी अन्य का सहयोग लेना ही पड़ता है। “अकेला चनाभाड़ नहीं फोड़ सकता” कहावत भी इसी आशय का प्रतिपादन करती है। वस्तुतः यह समग्र सृष्टि परस्पर सहयोग का ही सुन्दर परिणाम है जीवन की प्रत्येक अनिवार्य क्रियायें भी परस्पर एक दूसरे की सहायता से पूर्ण होती है।

मन्मथन परिलुप्तमतीनां प्रायषः स्खलित मत्युपकारि।

प्रायः कामदेव द्वारा अपहृत बुद्धि वाले व्यक्तियों की भूल भी उपकारक हो जाती है।

‘प्राप्यते गुणवताऽपि गुणानां व्यक्ताश्रयवेषन विषेर्षः।

कविवर नारायण पण्डित ने हितोपदेश में कहा है हीयते हि मतिरज्तात। हीनौ सह समागमात। समेष्च समतामेति विशिष्टैश्च विशिष्टताम्। अर्थात् हीन लोगों के समागत से बुद्धि क्षीण हो जाती है, समान बुद्धि वालों के साथ से समान एवं विशिष्ट जनों की संगति से सामान्य बुद्धि भी वैशिष्ट्य को प्राप्त कर लेती है। जैसे नाले का मैला जल भी नदी में मिलकर गंगा का पावन जल बन जाता है और नदियों का मीठा जल भी खारे समुद्र में जाकर खारा हो जाता है पीने योग्य नहीं रहता है यहाँ जैसी संगति वैसी प्रकृति का कथन सत्य सिद्ध होता है। मनुष्य के जीवन में भी संगति का ही विशेष महत्त्व होता है। निश्चित ही जैसे लोगों का समागत या आश्रय हो मनुष्य भी वैसा ही हो जाता है। इसीलिये कवि भारवि ने कहा है कि गुणों से सम्पन्न आश्रय के कारण गुणों में विशेषता आ जाती है।

आत्म्वर्गहितमिच्छति सर्वः।

संसार का प्रत्येक प्राणी अपने वर्ग विशेष का ही कल्याण चाहता है। अपने वर्ग में किसी के भी दुःखी हो जाने पर वह दुःखी हो जाता है। हम प्रायः देखते रहते हैं कौए की काँव-काँव ध्वनि सुनकर अनेक काक वहां एकत्रित हो जाते हैं, तो कभी भौंकते हुए कुत्ते की आवाज सुनकर दूसरे कुत्ते भी वहीं एकत्रित हो जाते हैं। प्रत्येक वर्ग में यह प्रवृत्ति देखी जा सकती है जो वह दर्शाती हैं कि जगत् का प्रत्येक प्राणी अपने वर्ग की भलाई चाहता है। यदि हम इस विषय में मनुष्य जाति का विवेचन करे तो देखा जा सकता है कि अलग-अलग वर्ग विशेष के रूप में संगठित होकर हजारों संगठन अपने वर्ग के अधिकाधिक हित की मांग करते हैं फिर विद्यार्थी हो या शिक्षक, मजदूर हो या मौलिक कर्मचारी हो या अधिकारी, विधायक हो या सांसद महिला हो या पुरुष राजनेता हो या अभिनेता या समाज सेवी सभी वर्ग अपने ही वर्ग के

कल्याण की कामना करते हैं। मनुष्येतर जातियों में भी यही व्यवहार है दृष्टव्य है। कवियों ने इसी मन्तव्य को पृथक-पृथक रूप में वर्णित किया है। अमर कवि कालिदास ने "सर्वः सगन्धेव विश्वासिति" और "सर्वः कान्तमात्मीयं पश्यति।" कहकर प्राणियों को इसी भावना को प्रकट किया है कि सदैव प्रत्येक प्राणी अपने ही वर्ग का हित चाहता है। वस्तुतः भी यह उचित ही है क्योंकि वह स्वानुभूति द्वारा किसी भी व्यक्ति के लिये अपने वर्ग के लोगों के सुख-दुःख की अनुभूति कर पाना अधिक सहज होता है। यही कारण है कि समान वर्ग वालों के दुःखों के प्रति मनुष्य शीघ्र दयार्द्ध हो जाता है और इसीलिये वह उनके हित की कामना भी करता है। कारयत्मनिभृता गुण दोष वारूणी जलु रहस्यविभेद राजस्थानी भाषा में एक कहावत प्राप्ति है।

दास पीतां दर गई, बिगड़ गया जब होस।

गलियां में गोता लगे, रोव करम दे दोष।।

वस्तुतः मदिरा का कुछ प्रभाव ऐसा ही होता है कि उसका घूंट पीते ही मनुष्य की बुद्धि का नाश होने लगता है, भले-बुरे का ज्ञान क्षीण हो जाता है। मदिरा के नशें में मनुष्य इतना अधिक प्रमत्त हो जाता है कि इस अवस्था में भूत और भविष्य की चिंता किये बिना अपने परिचित किसी भी व्यक्ति के गुण-दोषों के सत्य का रहस्योद्घाटन कर देता है।

प्रारम्भ में शौक के रूप में मदिरा का सेवन करने वाले मनुष्यों के लिये बाद में वह बुरी आदत का रूप ले लेती है। दुष्परिणाम के रूप में मनुष्य अपना सर्वस्व भी खो बैठता है कोई भी उसमें संतुष्ट नहीं रह जाता है। स्वयं के धन और स्वास्थ्य की अत्यधिक हानि होती है। प्रमुख तौर पर तो मनुष्य स्वयं की सुध-बुध खो बैठता है और माव प्रलाप ही करता है। प्रसिद्ध पालिग्रन्थ में मदिरा पान के दुष्परिणामों का उल्लेख मिलता है।

"मदिरा तत्काल धन की हानि करती है कलह को बढ़ाती है रोगों का घर है, अपयश की जननी है, लज्जा का नाश करती है और बुद्धि को दुर्बल बनाती है।"

ऐसा मदिरा पान करने वाले मनुष्य प्रसत्तावस्था में गुण दोषों के सत्य जो रहस्य उदघाटित करते हैं स्वाभाविक अवस्था में आने पर उन्हें स्वयं अपने कथनों के विषय को खबर नहीं होती है।

तेजयुक्त तपस्वियों के लिये संसार में कोई भी काम दुष्कर नहीं होता है वे सर्वदा सारे कार्यों के लिये सामथ्र्य सम्पन्न होते हैं कठिन तपस्या करने के प्रभाव से वे ऐसे सिद्ध हस्त हो जाते हैं कि कोई भी कार्य उनके लिये कठिन नहीं रह जाता है।नीतिकार चाणक्य ने कहा है-

"प्रकृतिमहतां नाव्यां तेजो न मूर्तिमपेक्षते"

अर्थात् जो प्रकृति से ही महान है उनके स्वाभाविक तेज को किसी आकार-प्रकार की अपेक्षा नहीं होता है। अपने तेज के बल से वे सर्व कार्य समर्थ होते हैं, इसीलिये कहा भी गया है-

"दुष्करं किं महात्मनाय।"

चलाते नयान्न जिगीषतां हि चेतः।

निष्कर्ष:-

महाकवि भारवि ने वीर पराक्रमी अर्जुन के चरित्र का वर्णन करते हुये कहा है कि विजयाभिलाषियों का चित्त नीतिपथ से कभी विचलित नहीं होता है। यद्यपि संसार में सभी मनुष्य अपनी विजय की अभिलाषा रखते हैं, लेकिन वर्तमान समय में बहुधा विजयभिलाषी मनुष्य मात्र न्याय का सहारा लेकर ही नहीं चलते, वरन् अनीतिपूर्वक येन-केन प्रकारेण उचित अनुचित प्रयोगों से विजयी बनना चाहते हैं। विजय प्राप्त करने की महत्त्वाकांक्षा में वे अपना विवेक भी खो बैठते हैं, राम अर्जुन युधिष्ठिर तथा कृष्ण जैसे न्याय लोगों की संख्या अति न्यून अथवा नगण्य सी हो गयी है। बलपूर्वक अपने पराक्रम और शारीरिक शक्ति से प्राप्त की जाने वाली विजय ही विजय मानी जाने लगी है भले ही उसमें नीति का अभाव हो। इसी लिये भारवि का कथन सुस्पष्टकरता है कि न्याय के द्वारा जीत हासिल करने वाला मनुष्य ही वस्तुतः विजयी कहलाने का अधिकारी है।

संदर्भ सूची:-

1. भारवेरर्थगौरवम्
2. किरातार्जुनीयम्, 1/10
3. किरातार्जुनीयम्, 3/20
4. किरातार्जुनीयम्, 2/13
5. किरातार्जुनीयम्, 3/31
6. किरातार्जुनीयम्, 3/51

7. किरातार्जुनीयम्, 3/53

8. किरातार्जुनीयम्, 3/68

9. किरातार्जुनीयम्, द्वितीय सर्ग के अन्य प्रमुख श्लोक

10. किरातार्जुनीयम्, तृतीय सर्ग के अन्य प्रमुख श्लोक

11. किरातार्जुनीयम्, महाकाव्य के अन्य प्रमुख श्लोक

12. किरातार्जुनीयम्, प्रकाशित शोध पत्र, विभिन्न पत्रिकाएं।

13. किरातार्जुनीयम्, प्रमुख शोध कार्यों का संकलन।

Corresponding Author

Dr. Badlu Ram Shastri*

Lecturer in Sanskrit, B.S.R. Govt. Arts College, Alwar, Rajasthan